Impact Factor (SJIF): 6.126 E-ISSN: 2583-1615, P-ISSN: 3049-3498

International Journal of Research in Academic World

Received: 29/October/2025 IJRAW: 2025; 4(12):19-21 Accepted: 11/December/2025

वेदों में वनस्पति-पर्यावरण संतुलन मानव का उत्तरदायित्व

*[1]विजय महावर

*[1]सहायक आचार्य, इतिहास (अतिथि संकाय), म.द.स. विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत।

सारांश

भारत में प्राचीनकाल से ही वनस्पतियों - पर्यावरण संतुलन मानव के उत्तरदायित्व का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक युग में यद्यपि पर्यावरण दूषित होने का भय नहीं था, परन्तु इसके प्रति जागृति उस समय अवश्य थी। वैदिक युग में घर-घर में हवन होते थे, जिससे वातावरण शुद्ध रहता था, जनसंख्या थोड़ी थी तथा वन अधिक थे। अतः प्रदूषण की समस्या भी नहीं थी। वैदिक युग में जलवायु की शुद्धि का मुख्य साधन हवन था, जिसके द्वारा वातावरण की निश्चित रूप से शुद्धि होती थी। यज्ञ के लिए समर्पित ऋग्वेद के सूक्तों (1.36.3.8, 8.31, 10.13, 10.183) में यज्ञ द्वारा किये जाने वाले पर्यावरण शोधन की ओर संकेत ऋग्वेद में प्रभूत मात्रा में प्राप्त होता है। वनस्पति के लिए तो ऋग्वेद में अनेक सूक्त (1.90, 1.91, 10.97) प्राप्त होते हैं जिनमें वनस्पतियों व पर्यावरण संतुलन की महिमा एवं आवश्यकता की प्रचुर सूचना मिलती है। वानस्पत्य नामक सूक्त में वनस्पति को देवता माना गया है। प्रियस्तोगो वनस्पति (1.91.6) मधुयान्नौ वनस्पति (1.90.8) कहकर वनस्पति के जलवायु शोधक होने को प्रमाणित किया गया है।

मुख्य शब्द: वनस्पति, पर्यावरण, जलवायु, वैदिक युग, ऋग्वेद आदि।

प्रस्तावना

वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् (विद् ज्ञाने) धातु से बना हैए जिसका अर्थ है जानना। वेद शब्द की व्युत्पत्ति चार धातुओं से निष्पन्न होती है. विद् सत्तायाम्, विद्लृ विचारणे, विद् लाभे तथा विद् ज्ञाने। इन्हीं मूल धातुओं को लेकर स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेद शब्द का निर्वचनं इस प्रकार किया है-

विदन्ति जानानत, विधन्ते भवन्ति विन्दन्ति
अथवा विन्दन्ते लभन्ते, विन्दन्ति विचारयन्ति,
सर्वे मनुष्याः सत्यविद्यां यैर्येषु वा तथा
विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।

अर्थात जिनसे सभी मनुष्य सत्य विद्या को जानते हैं, अथवा प्राप्त करते हैं, अथवा विचारते हैं, अथवा विद्वान होते हैं, अथवा सत्यविद्या की प्राप्ति के लिए जिनमें जिसके द्वारा प्रवृत्त होते हैं, उन्हें वेद कहते हैं। वेदों में कहा गया है.

एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति

सत् एक है इसे प्रकर्ष मति ज्ञानी अनेक प्रकार से व्यक्त करते हैं। वेदों को अपौरुषेय माना जाता है। प्रारम्भ में वेद एक ही था। महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने वेदों को चार भागों में विभक्त कर दिया उन्हें वेद व्यास की उपाधि इसीलिए प्रदान की गई।

भारतीय परम्परा में वेदों को ज्ञान का परम पवित्र भण्डार माना जाता है। स्मृतियों एवं पुराणों में वेद की महिमा का गान मुक्त कण्ठ से गाया गया है। वेद को पितरों एवं मनुष्यों का सनातन चक्षु कहा गया है, यहाँ चक्षु शब्द का प्रयोग ज्ञान अर्थ में किया गया प्रतीत होता है।

पर्यावरण शब्द का अर्थ चर्तुदिक आवरण से है, इसका स्पष्ट आशय है, प्राणियों, वृक्षों, वनस्पतियों, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश आदि का आवरण ही सृष्टि का पर्यावरण है। वैसे पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है. वातावरण। अंग्रेजी में इसे म्छटप्व्छव्डम्छज् शब्द से अभिहित किया जाता है।

ऋग्वेद में वनस्पति और वृक्षों को न काटने की परामर्श है पर हानिकारक घास को स्वास्थ्य के लिए काटने की सलाह दी गई है [1]

मा काकम्वीरमुद्धृहो वनस्पतिम्।
अशस्वतीर्वि हि नीनशः।।

वैदिक वाङ्मय के अंतर्गत संहिताएँ, ब्राह्मण-ग्रंथ, आरण्यक एवं उपनिषद् ज्ञान के चार प्रकार है। प्रथम तीन कर्मकाण्ड प्रधान और अन्तिम ज्ञानकाण्ड प्रधान है। वनस्पति संरक्षण और पर्यावरण के अध्ययन की दृष्टि से ये सभी महत्वपूर्ण हैं। वैदिक देवमण्डल पर ध्यान दें तो वैदिक कर्मकाण्ड में यज्ञ विधान में

*Corresponding Author: विजय महावर

वनस्पति, देवताम्यो नमः

की ध्वनि बार-बार गूँजती है और तत्त्व-ज्ञान की दृष्टि से वृक्ष-वनस्पतियों को उसी परम् तत्व का सृजन माना जाता है जो अखिल ब्रह्माण्ड का नियामक है।ऐतरेय ब्राह्मण में वनस्पति को मनुष्य का प्राण बताया है. प्राणो वै वनस्पतिः प्राणो वै वनस्पतिः इस वाक्य को ऐतरेय ब्राह्मण में बार-बार कहा गया है और वनस्पति को मानव मात्र के प्राण बताकर इसकी अनिवार्यता बतायी गई है। [2]

वनस्पति शब्द वन व पति शब्दों से मिलाकर बना है। यास्क तथा निघण्टु में वन शब्द का अर्थ जल एवं सूर्य किरण है तथा पति शब्द का अर्थ रक्षा करने वाला बताया गया है अतः वनस्पति शब्द का अर्थ हुआ जो जल कीरक्षा करता है तथा जो सूर्य किरणों के ताप से अपने आश्रितों की रक्षा करता है। वस्तुतः वृक्षों एवं वनस्पतियों से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति संरक्षित रहती है साथ ही वृक्ष एवं वनस्पतियाँ अपनी छाया से समस्त प्राणियों को सुख एवं शान्ति प्रदान करती है। पीपल, अश्वत्थ देवदार व वट वृक्ष आदि के समीप जलस्रोत पाये जाते है और जहाँ इस प्रकार के वृक्षों की बहुतायत होती है वहाँ समय-समय पर बादलों का निर्माण होता है, जल की अच्छी वर्षा भी होती है। इससे यह स्पष्ट है कि वृक्षों में वह गुण है कि वे अपने नीचे व ऊपर दोनों ओर से जल निष्पन्न करने की क्षमता रखते हैं।

वृक्षों, वनस्पतियों का प्रतीकार्थ वेदों में बहुशः अभिव्यक्त है। एक उदाहरण है अरणि-मंथन का, दो अरणियों (काष्ठ के टुकड़ों के घर्षण से अग्नि की उत्पत्ति होती है यह घर्षण की कर्षण है जीवन के क्षेत्र में।) डॉ० सच्चिदानंद मिश्र ने वैदिक ग्राम्य जीवन पर कुछ प्रतीकों का विशद वर्णन किया है। [3] वैदिक साहित्य में प्रतीकों द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि कर्षण वह प्रक्रिया है, जिसमें वनस्पति का पृथ्वी के साथ उसी प्रकार संभोग होता है, जैसे पति-पत्नि का यथा यौनो तथा क्षेत्रे प्रारम्भ में कषर्ण का यह कार्य विल्व अथवा उदुम्बर लकड़ी के तीक्ष्णाग्रदण्ड से सम्पन्न किया जाता है। [4] क्योंकि बिल्व और उदुम्बर को फलदायक वृक्ष की मान्यता प्राप्त थी। महानग्नी को पृथ्वी और स्त्री के प्रतीक के रूप में यहाँ चित्रित किया गया है। उत्पादन की पूरी प्रक्रिया कृषि-कर्म-कल्प में अभिनीत होती थी। इस कल्प में सर्वप्रथम पवित्र वृक्ष की लकड़ी से निर्मित हल में फाल को जोड़कर उसको सोम से अभिसिंचित किया जाता था।

अतः यह स्पष्ट है कि पति के हाथ में रखा हुआ मिट्टी का ढेला भूमि का प्रतिनिधित्व करता है, जो पत्नि के सदृश है। हल पति के सदृश है। इस प्रकार के वार्तालाप का दर्शन विवाह-संस्कार में पति द्वारा पत्नि के केश-कर्म के समय होता है, जिसमें पत्नि अपनी उपलब्धि के प्रसंग में पुत्र और पशु का उल्लेख करती है। [5]

इष्कृति को औषधियों एवं वनस्पतियों की माता कहा गया है और इस प्रसंग में प्रतीत होता है कि यहाँ पर इष्कृति का अर्थ है, खेत को साफ करना या खेत में बीज बोने की प्रक्रिया और इस प्रकार होगा खेत को साफ कर हल चलाना। [6]

वैदिक युग के साहित्य से अनेक प्रतीक कालान्तर की भारतीय संस्कृति में भी अपनाये गये यथा श्री के वृक्ष का अभिप्राय संसार रूपी वृक्ष से है जिसे अश्वत्थ कहा गया है। वहीं पीपल या बोधिवृक्ष हुआ। उसके भीतर की दुर्धर्ष शक्ति फूल और फलों के रूप में प्रकट होती है। विष्णु और लक्ष्मी विश्व के माता-पिता के प्रतीक है, जैसे द्यावापृथिवी, शिवपार्वती या राधाकृष्ण। ये दोनों विश्व के आदिकारण हिरण्यगर्भ के दो रूप हैं जिनसे अनन्त स्त्री-पुरुषों की परम्परा प्रवृत्त हुई। [7]

महाकाय महदभूत की संज्ञा यक्षों की थींए वह ब्रहा का ही दूसरा नाम था। वह महावृक्ष के समान हैए जिसकी शाखा प्रशाखाओं पर अनेक देवों का निवास है। जीवन और विश्व के महान् रहस्यमय देव का उपयुक्त प्रतीक यक्ष के रूप में माना गया है। [8] इन्द्र, मित्र, वरुण की वक्षों से तुलना की गई है। कालान्तर में बुद्ध और महावीर की भी यक्ष से समानता दी गई है।

एक और प्रतीक है कल्पवृक्ष, कल्पवृक्ष की उत्पत्ति समुद्रमंथन से हुई। यह इच्छाओं की पूर्ति करने वाला वृक्ष और मन का प्रतीक है। कल्प का अर्थ चिन्तन विचार या मन से है। कल्पवृक्ष के नीचे खड़े होकर मनुष्य जो सोचता है, वह उसे प्राप्त हो जाता है। कल्पवृक्ष को स्वर्ग का वृक्ष और देववृक्ष कहा गया है। उसकी शाखाओं और उसके पल्लवों पर देवों का निवास था। इस वृक्ष की चारों दिशाओं में चार शाखाएँ मानी जाती थी। इससे इसका सम्बन्ध विश्वस्वस्तिक से भी ज्ञात होता है। उत्तरकुरू के कल्पवृक्षों का वर्णन रामायण, महाभारत, पुराण, जैन ग्रन्थ और काव्यों में बहुत आया है। भरहुत, साँची आदि स्थानों की कला कृतियों में कल्पवृक्ष का अंकन बहुशः मिलता है। जैन ग्रन्थों में 10 प्रकार के कल्पवृक्षों का उल्लेख प्राप्त होता है। [9]

ऐतरेय ब्राह्मण और कौषीतकी ब्राह्मण में वृक्ष-वनस्पति को प्राण कहा गया है, प्राणों वै वनस्पतिः क्योंकि वे मानव मात्र को प्राणवायु देते हैं। [10]

औषधियों ओष अर्थात् दोषों और प्रदूषण को समाप्त करती है, अतः इन्हें ओषधि कहा जाता है। परमात्मा का जो उग्र रूप या रूद्र रूप है, उससे इन वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई हैं इस उग्र रूप के कारण ही ये वनस्पतियाँ दोषों एवं प्रदूषण को नष्ट करती है। वनस्पतियाँ संसार को आनन्द देती है, अतः इनका नाम मुदः है। वृक्ष-वनस्पति मानव जीवन में हर्ष और प्रसन्नता के स्रोत है।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि वृक्ष व वनस्पतियाँ, पशुपति अर्थात् शिव के रूप हैं। यजुर्वेद के रूद्राध्याय में शिव को वृक्ष, वनस्पति, वन, ओषधि, कृषि एवं क्षेत्र का स्वामी बताया गया है। भगवान् शिव का शिवत्व यही है कि वे विष को पीते हैं और अमृत प्रदान करते हैं। वृक्ष व वनस्पति शिव के रूप हैं। शिव का दूसरा रूप रूद्र है। यह संसार का नाशक है। यदि वृक्षों को काटा जाता है और प्रदूषण को नियंत्रण नहीं होता है तो विश्व का संहार या विनाश अवश्यंभावी है। यह है शिव का रूद्रत्व या रौद्र रूप। [11] रूद्र के विषय में कहा गया है कि रूद्र पृथ्वी, समुद्र, अन्तरिक्ष और द्युलोक में सर्वत्र विद्यमान है। रूद्रों की संख्या अनन्त है। इसका अभिप्राय यह है कि वृक्ष-वनस्पतियों की संख्या भी अनन्त है, अतः रूद्र भी अनन्त है। वृक्ष-वनस्पति, पृथिवी, समुद्र, जल आदि में सर्वत्र विद्यमान है।

यजुर्वेद में वृक्षों का वर्णन करते हुये कहा गया है कि वृक्ष मधुर फल देते हैं। ये वर्षा करने वाले बादलों को आकृष्ट करते हैं और पृथ्वी को दृढ़ बनाते हैं। सुवृष्टि के लिए वृक्षों की अत्यन्त उपादेयता है। [12] वृक्षों को मानव मात्र का रक्षक बताया गया है। इन रक्षकों में वन, औषधियाँ, पर्वत और सूर्य की गणना की गई है। ऋग्वेद में यह भी गणना की गई है कि वृक्ष व वनस्पती मानव मात्र के रक्षक हैं। ये हमारा साथ न छोड़ें। इनसे हमारे घरों का कल्याण है तथा इनको छोड़ने से विनाश है। [13] ऋग्वेद में वृक्ष और वनस्पति के लिए वनिन शब्द आया है [14] और कहा गया है कि वृक्षों का रोपण करें, इनकी सुरक्षा करें। ये जल के स्रोतों की रक्षा करते हैं। अन्य मंत्रों में कहा गया है कि वृक्ष फूलें, फलें, वे बढ़े और हमारी भी वृद्धि हो। [15] वृक्ष हमारे बन्धु हैं हम उनकी रक्षा करें और उनको ठीक ढंग से बढ़ने दें। [16] हम वनों की उपेक्षा न करें। [17]

यजुर्वेद का कथन है कि वृक्ष-वनस्पतियों को ना काटें और न उन्हें हानि पहुँचायें। [18] मनुस्मृति में कहा गया है कि हरे वृक्षों को ईंधन के लिए काटना पाप है। हरे वृक्षों को काटना हिंसा है और इसके लिए अपराधी को यथायोग्य दण्ड दिया जाना चाहिए। विष्णुस्मृति में किस प्रकार के वृक्ष काटने वाले को कितना दण्ड देना चाहिए, इसका भी विवरण दिया है। फल के काम आने वाले वृक्ष को काटने पर एक हजार पर्ण, फूल वाले वृक्ष काटने पर पाँच सौ पण और लता-झाड़ी आदि काटने पर सौ पण दण्ड दिया जाय। पण शब्द रूपये के अर्थ में प्रयुक्त है। इन अपराधों को क्रमशः उत्तम, मध्यम और सामान्य अपराध बताया गया है। [19] वेदों में अन्न की महिमा इतनी थी कि वहाँ

अन्न को प्राण माना जाता था। यजुर्वेद में एक स्थल पर कहा गया है कि विधिपूर्वक कृषिरूप यज्ञ से उत्पन्न धान्, उड़द, जौ, तिल एवं अन्य तिलहन मूंग, कंगुनी, छोटे धान का चावल, साँवा, महुआ आदि छोटे दाने के अनाज त्रिवाट नामकधान्य जो बिना बोये जगता हैए गेहूंए मसूर तथा च शब्द से ग्रहित चना आदि के खाधान्न यज्ञ द्वारा समर्थ एवं सम्पन्न किये जाने चाहिए। [20]

अथर्ववेद में ऋषि अपने मुख की दन्तवालियों को निर्देश देता है कि तुम चावल खाया करो, जौ खाया करो, उड़द की दाल और तिल खाया करो। हे दन्तावलियों। यह अन्न का दाना शरीर में उत्तम बल की प्राप्ति रूप फल के लिए नियत किया गया है, परन्तु तुम कभी भी किसी मर माताः पशु पक्षियों को खाने के लिए उनकी हत्या मत करो। इसका आशय स्पष्ट है कि वेदों में अन्नाहार एवं शाकाहार का ही प्रतिपादन किया गया है। मांस भक्षण बर्जित किया गया है। अतएव आज कल जो मांस आदि अपवित्र एवं तामसी पदार्थों का खान-पान बढ़ रहा है, वह वैदिक दृष्टि से प्रदूषण युक्त है, क्योंकि मांस आदि की प्राप्ति के लिए पशु-पक्षी आदि प्राणियों की हिस्स कर उन्हें पकाया जाता है वह स्थान दुर्गन्ध से युक्त एवं अशुद्ध होता है तथा अनेक व्याधियों को जन्म भी देता है। इसीलिए वृक्षों, वनस्पतियों एवं लता-पुंजों के आरोपण, संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए वेदों में मनुष्यों को प्रेरणाएं प्रदान की गई। अथर्ववेद के एक मंत्र [21] में उल्लेख है कि सृष्टिकर्ता ने जल, वायु एवं औषधियों को इस भूमण्डल पर इसलिए उत्पन्न किया है जिससे मनुष्यादि सनी जीव-जन्तुओं को शान्ति प्राप्त हो।

अथर्ववेद में कहा गया है कि हे वनस्पतियो ! तुम समस्त जीवों को सुख प्रदान कर उनका उत्थान करों। [22]

ऋग्वेद के दशम् मण्डल [23] में वर्णित अरण्यानी सूक्त में नाना प्रकार की औषधियों तथा वनों के गुणों एवं उपयोगिताओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वन-देवी को हीं ऋग्वेद में अरण्यानी कहा गया है। इसी प्रकार ऋग्वेद के वनौषधिसूक्त में औषधियों को भी दिव्य दृष्टि से प्रशंसित किया गया है। औषधियों को माताएँ एवं देवियाँ बताया गया है एवं सोम को उनका राजा। औषधियाँ निश्चित रूप से वृक्षों एवं वनस्पतियों से ही प्राप्त होती है इसलिए वैदिक काल में वृक्षों एवं वनस्पतियों के महत्त्व का बहुशः विवेचन किया गया है।

यजुर्वेद के रूद्राध्याय में हरे-भरे वृक्षों तथा उनके रक्षकों को विशेष आदर-सत्कार देने की बार-बार प्रेरणा की गई है। यथा नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यों [24] अर्थात् हरे-भरे वृक्षों के लिए सत्कार का भाव हो, वनानां पतये नमः [25] अर्थात् वनों के रक्षक के लिए आदर-सत्कार हो, वृक्षाणां पतये नमः अरण्यानां पतये नमः [26] अर्थात् वृक्ष पालकों के लिए नमस्कार तथा अरण्य पालकों के लिए नमस्कार हो। औषधीनां पतये नमः [27] अर्थात् औषधियों के रक्षक के लिए नमस्कार हो। एक ही अध्याय में प्रयुक्त इन वृक्ष, वन, औषधि, वनस्पति तथा अरण्य तथा वनपाल, अरण्यपाल नामों द्वारा समस्त वानस्पतिक जगत् के लिए पूर्ण आदर-भाव तथा उनकी रक्षा करने के लिए प्रवृत्ति व प्रेरणा का पाया जाना वानस्पतिक पर्यावरण के सम्बन्ध में सर्वोच्च आदर्श की बात है।

वेदों में वनस्पति को शान्ति का कारक अर्थात् शान्ति देने वाला कहा गया वनस्पतिं शमितारम् [28] वनस्पतिः शमिता [29] पेड़-पौधों से रहित स्थान अशान्त और उपद्रवग्रस्त रहता हैए जबकि पेड़ पौधों वाले स्थान में शक्ति का निवास रहता है। वेदों के अनुसार पृथ्वी का अधिक से अधिक भाग पेड़-पौधों से हरा-भरा रहना चाहिए।

निष्कर्ष

वेदों में व्यष्टिगत एवं समष्टिगत सभी प्रकार के पर्यावरणों को संरक्षा एवं दूषित होने पर उन्हें संस्कारित करने की विधि बताई गई है। इसमें पार्थिद जलीय एवं वायवीय पर्यावरण के संरक्षण के विषय में अनेक संदर्भ प्राप्त होते हैं। पार्थिव पर्यावरण का तात्पर्य पृथ्वी पर विद्यमान एवं पृथ्वी से उद्भूत होने वाली सभी वस्तुएँ परिभाषित की जाती है। पृथ्वी पर विद्यमान पदार्थों में वृक्ष एवं वनस्पत्तियाँ प्रारम्भिक घटक के रूप में मानी जाती है और पृथ्वी से उद्भूत होने वाली कृषित फसलों को खाद्यान्न माना जा सकता है।

ऋग्वैदिक ऋषि पृक्षों एवं वनस्पतियों की उपयोगिता से पूर्ण अवगत थे, इसीलिए इनके संरक्षण एवं संवर्द्धन के प्रति उन्होंने समाज को प्रेरित किया।

मनुष्य के बहुत से कार्य वृक्षों एवं वनस्पतियों के माध्यम से सम्पन्न होते हैं। अतः उसकी संरक्षा एवं समृद्धि का ध्यान रखने के लिए हमारे वैदिक ऋषियों ने उसे प्रेरित किया। ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में आये एक समान मंत्र में अलंकारिक शैली में प्रश्न किया गया है कि विश्व निर्माता या सृष्टिकर्ता ने इस जगत् की रचना किन उपादानों से की तथा वह कौन वन तथा वृक्ष थे जिससे सूर्य आदि स्वय प्रकाशमान नक्षत्र पिण्ड तथा पृथ्वी आदि सभी पिण्डों का निर्माण किया। इस वैदिक मंत्र में किये गये प्रश्न का उत्तर भी निहित है कि सृष्टि का निर्माण वनों एवं वृक्षों से हुआ है। इस प्रकार वन एवं वृक्ष की कल्पना इस जगत् के मूल कारण में अन्तर्निहित है, जिससे उसकी महिमा एवं उपयोगिता स्वयं स्पष्ट होती है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 6.48.16
2. ऐतरेय ब्राह्मण; 2.4, 23, 7.32
3. प्राचीन भारत में ग्राम एवं ग्राम्य जीवन, पूर्वी प्रकाशन, 1984.
4. महान् वै भद्रौ बिल्वों महान् पक्व उदुम्बरः ऋग्वेद खिल 5.22.10 प्राचीन भारत में ग्राम एवं ग्राम्य जीवन, पूर्वा प्रकाशन, 1984
5. ए०बी० कीथ रेलीजिन एण्ड फिलासफी ऑफ दी वेद एण्ड उपनिषदज, द्वितीय खण्ड, दिल्ली, संस्करण, 2000 पृष्ठ, 396
6. इष्कृतिनामिं वो माताऽथी यूयं स्थ निष्कृतीः। सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ।। ऋ० 10.97.9
7. मनु स्मृति 1/32
8. अथर्ववेद 10.7.38
9. अग्रवाल, वासुदेव शरण भारतीय कला, पृष्ठ 158
10. एतेरेय ब्राह्मण 2.4 कौषितिकी 12.7
11. क औषधयो वै पशुपतिः। शत ब्रा० 6.1.3.12 ख. नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः। क्षेत्राणां पतये नमः। वनानां पतये नमः। वृक्षाणां पतये नमः। औषधीनां पतये नमः। वृक्षाणां पतये नमः। यजु० 16.17.19
12. वनस्पतिः देवमिन्हम् अवर्थयत्ः । पृथिवीम् अदहीत्। यजु0 28.20
13. ऋग्वेद 5.41.11, 6.21.9
14. ऋग्वेद 7.4.5
15. ऋग्वेद 3.8.11
16. ऋग्वेद 6.47.26
17. ऋग्वेद 8.1.13
18. औषध्यारते मूलं मा हिंसिषम्। यजु० 1.25
19. मनु० 14.63.66
20. यजुर्वेद 18.12
21. आयो वाता श्रीषधय स्तान्येकास्मिन् मुवन अर्पितानि ।। अथर्ववेदः 18.1.17
22. अथर्ववेद 1.2.3
23. ऋग्वेद 10.97.1-23
24. यजुर्वेद, 16.17
25. वही, 16.18
26. वही, 16.19.20
27. वही, 16.19
28. यजुर्वेद 28.10
29. यजुर्वेद, 29.34।